शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 दिसम्बर 2017
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

कविता का रंगरूट कवि : लीलाधर जगूड़ी

डॉ. वन्दना झा
एसोसिएट प्रोफेसर
बसंत महिला महाविद्यालय
(काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)
वाराणसी, उत्तरप्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

मन हुआ इस दुनिया को अपनी दुनिया कह दूँ
मन हुआ अपनी दुनिया को सुरम्य दुनिया कह दूँ
उसके बाद भी मन हुआ
इस दुनिया से अपनी दुनिया को कहीं छिपाकर रख दूँ-

अपनी दुनिया को कहीं छिपाकर रखने का भाव दरअसल हर प्यारी और अच्छी चीज को बचाकर रखने की ललक है। कवि बदलते परिवेश को भाँप रहा है और उसकी चिन्ताएँ दुगुनी होती जा रही है। कवि समूचे समय की अच्छाइयों का नोटेशन करना चाहता है जो बुरे वक्त में काम आ सके। लेकिन कठिन कर्म की तरह कविता को बचाना भी एक संकट है। इसीलिए जगूड़ी जी कहना नहीं भूलते-

मैं बुराइयों से घिरे समय का अनादर्श कवि हूँ
जैसे मनुष्य समाज में वैसे
मेरी कविता में भी बहुत कुछ गड़बड़ है।

अच्छी चीजों को बचाने और टूटने से रोकने की जद्दोजहद में फँसा कवि लीलाधर जगूड़ी हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में लीलाधर जगूड़ी के कविकर्म पर विचार किया गया है।

लीलाधर जगूड़ी की साहित्य साधना

सीताकांत महापात्र कहते हैं- हिन्दी में अज्ञेय, केदारनाथ सिंह और लीलाधर जगूड़ी की कविताओं ने मुझे बहुत प्रभावित किया है। केदार जी और जगूड़ी तो मेरे प्रिय कवि ही हैं। दोनों की कविता में वाइड रेंज है। दोनों के कहने के तरीके भिन्न हैं। अपना-अपना मुहावरा है पर संवेदनाएँ गहरी हैं।

मुश्किल वक्त से होड़ लेना रंगरूट की पहचान है। साहित्य का यह रंगरूट कविता का वह संसार रचता है, जिसमें वादों के लिए कोई जगह नहीं है। अकविता आन्दोलन से जोड़े गए इस कवि की पहचान को बहुत सीमित कर देखा गया। जब हम किसी कवि को किसी वाद या किसी काल में बाँट देते हैं तो उसकी सृजनात्मकता के साथ हम न्याय नहीं करते। जगुड़ी भी इसी प्रकार के अन्याय के शिकार हुए। उनकी रचना के विस्तार को पाठक या आलोचक ने समझा नहीं। लेबल चस्पा कर निकल जाना बेहद आसान है और इस सरलता के शिकार जगूड़ी जी हुए। अपनी 'प्रारब्ध' नामक कविता में जगूड़ी कहते हैं-

अगर हम युद्ध में हों

अनुभव काम आते हैं शब्द नहीं
प्रेम में हैं तो और भी संकट है
न अनुभव काम आते हैं न शब्द।

प्रेम में डूबी जगूड़ी जी कविताएँ मार्मिकता का बयान करती हैं पूरे विश्वास के साथ। बयानों, किस्सों, वार्तालापों, दृष्टान्तों, स्वप्नों, जनविश्वासों, अनुभूतियों, मिथकों, मुहावरों, सूक्तियों, अतिरंजनाओं का एक बड़ा जखीरा कवि के पास है, जिसका इस्तेमाल वह व्यापक कैनवस पर करता है। स्वयं की कविता के बारे में वे कहते हैं-

मेरी कविता न बयान देती है न फैसला
वह दृश्यों के भीतर ही फँसी रह जाती है
न आग चुरा सकती है न चोर का साहस
मेरी कविता वारदात की तरह नहीं होती (बुराइयों से घिरे समय में)

जब आजकल के कवि किसी झंडे के तले अपनी कविता की छाँव मुहय्या करवाने की कोशिश में लगे हैं, ऐसे में जगुड़ी का रचनाकार 'इतिहास से भी पहले के समय में जीने का आकांक्षी है-

मैं रहना चाहता हूँ कुछ इस तरह कि एक मनुष्य
इस पृथ्वी को इसके रसातल से जानता है
एक मनुष्य जो इस पृथ्वी को इसके तलातल से जानता है।

पृथ्वी को तलातल से जानने का आकांक्षी कवि मनुष्य और प्रकृति के साहचर्य का आकांक्षी है। बिना किसी आन्दोलन का साथ दिए या उसका प्रवर्तक बने कवि अपने व्यक्तित्व के साथ जीना चाहता है एवं दूसरे के व्यक्तित्व का भी उतना ही सम्मान करता है-

अपने-अपने व्यक्तित्व की यादें लेकर
अपनी-अपनी आदतों की यादें लेकर
अपने-अपने परिणामों का चेहरा लेकर
ज़मीन पर फैले
दबने का इंतज़ार कर रहे हैं
बीज और बीज और बीज

कवि उस छवि को नहीं भूलना चाहता, जिसमें उसके पूर्ववर्ती की छवि है। आनेवाला हर कोई अपने पुराने की स्मृति के साथ आगे बढ़ता है। यह कवि की जीवंतता का परिणाम है कि वह परिवेश और व्यक्ति के साथ बीज और अंकुर की गरिमा को नकारता नहीं बनाए रखता है-

हर बीज में पहले वाले का बाद वाला आकार
हर आकार में पूर्ववर्ती का अनुवर्ती अंकुर
छिपा रहता है आत्मा की तरह।

कवि के होने की सार्थकता कविता के संसार में व्यक्त उसके अनुषंग को देखकर की जा सकती है। कवि का जड़-जमीन से लगाव इतना तीव्र है कि वह उनसे घुल-मिल जाने का अवसर तलाशता है। परमानन्द श्रीवास्तव अपनी पुस्तक 'कविता का अर्थात' में जगूड़ी जी की कविताओं के बारे में कहते हैं, "समय बार-बार अपनी शक्लों में बेतरतीब विडम्बनाओं के साथ जगूड़ी की कविताओं में आता है। इसके बावजूद की ये कविताएँ अलग-अलग अपनी संरचना अपने अर्थसन्दर्भ में मुकम्मल हैं, पर कभी इन्हें पढ़ते हुए एक कविता श्रृखंला जैसा अनुभव होता है। जगूड़ी का विचार तर्क एक कविता से दूसरी कविता में दूसरी से तीसरी कविता में निरंतर संक्रमित दिखाई देता है।" शायद यही वजह है कि वह पहाड़ के जोखिम को सरलता से अपनी कविता में उतार लाता है। पर्वतीय समस्याओं को अपनी कविता में सुलझाने की कोशिश करता है। कुछ ऐसी ही बातें या कारण रहे होंगे जब जगूड़ी जी मिली हुई गोरखा रेजीमेंट की नौकरी छोड़ कविता की दुनिया में चले आए होंगे। कवि की चुनौती उसका समय और परिवेश होता है। समय और परिवेश को परखते हुए कवि भविष्य की

रचना कर रहा होता है। अनुभव सम्पन्न होकर रचनाकार ऐसी आज़ादी नहीं चाहता जिसे कोई पकड़ न सके। ऐसी आज़ादी किस काम की जिसमें स्वयं के नष्ट होने का खतरा है। अस्तित्व को बचाए रखना कवि की ईमानदार कोशिश है- 'पेड़ की आज़ादी' की बात करते हुए जगूड़ी इस प्रयास को बनाए रखना चाहते हैं- भागकर उसे समाप्त करना अस्तित्व को मिटाना है-

पेड़ ने कहा-पत्ते न हों
तो बोझ कुछ कम हो
फूल न हों तो यह भी आफत मिटे
न हों फल तो कई तरह से
मेरी जान बच जाय
तना न हो तो काटा न जाऊँ
टहनियाँ न हों तो झुकना न पड़े
रही ज़मीन की जरूरत
वह मुझे नहीं बीज को पड़ती है
और अगर इन सबकी जड़ ही मिट जाय
तो कितना अच्छा है।

ऐसे समय में जब लेखकों की कलम से प्रकृति की छवियाँ या भाव दूर हो रहे हैं, जगूड़ी अब भी प्रकृति के कवि हैं। प्रकृति और संस्कृति का बहुत गहरा रिश्ता होता है। किसी देश या समाज की संस्कृति को समझना है तो प्रकृति को समझे बिना संस्कृति की पूरी समझ संभव नहीं हैं। और साहित्य की संस्कृति को समझना संभव ही नहीं है। दुनिया के काव्य में हिन्दी जैसा 'बारहमासा वर्णन' नहीं है क्योंकि यहाँ स्पष्ट रूप से छह ऋतुएँ हैं। दो-दो महीने की ऋतु। इन दो महीनों में भी फर्क है। प्रोफे. मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है कि कई बार होता यह है कि प्रकृति को बिल्कुल भुला दिया जाता है। समग्रता में देखें तो मनुष्य को प्रकृति के साथ जोड़कर देखने की जरूरत है। पूँजीवाद के दौर ने समाज में सामाजिक चेतना को ही नष्ट नहीं किया है, उसने मनुष्य को प्रकृति से भी काटकर अलग कर दिया है। ऐसी रचनाएँ प्रकृति से मनुष्य के संबंध की रक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

जगूड़ी जी इस परिप्रेक्ष्य में प्रकृति के कवि हैं। तमाम विषमताओं के बाद भी पहाड़ का यह कवि पहाड़ की छवियों को नहीं भूलता। इनके यहाँ युद्ध और युद्ध से संतप्त प्रकृति का जो बिंब उभरता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। 'बूढ़ा पहाड़' कविता में वे लिखते हैं-

वे चट्टानें भी खिसकने लग गयी हैं
जो पसलियाँ थीं और जिन्होंने चिड़ियों के प्यार में
दरख्तों के सपने देखे थे
जिन पर पिछली लड़ाईयों के बेजान तमगों की तरह
एक-एक ठूँठ जैसे बर्बरता की मोहरें हैं।

चिड़ियों के प्यार में दरख्तों के सपने देखना वर्तमान युग की सबसे कठिन क्रिया है। इस युग के युद्धोन्माद को दरकिनार कर अच्छी चीजों की कल्पना जगूड़ी जी की विशिष्टता है। पहाड़, चिड़ियाँ, पेड़ की फुनगी के साथ पहाड़ी नदी का सौन्दर्य कविताओं में बार-बार छलक जाता है। 'छोटी नदी के बारे में वे कहते हैं-

'एक तो ऐसी जो दो बूँद इकट्ठा होने पर बहने लगती है, यह उस तरह का बिंब है मानों छोटी बच्ची रूठी हो और दुलार मिला नहीं कि रोने लगी हो। जगूड़ी जी अपनी कविताओं में कई स्तरों को एक में समाहित करना नहीं भूलते। इसीलिए दूसरी जगह उनकी कविता का स्वर लगभग नदी की तरल हो उठता है। ठोस वस्तुजगत को तरल बना सकना जगूड़ी की ख़ासियत है-

है तो वह कहीं पर गाँव से भी ऊँची
पर आपको हर लोटे हर गिलास में मिलूंगी।
बड़ी नदी में तीर्थ करते हैं, पर्व नहाते हैं पहाड़ों के लोग
पर उससे खेत नहीं सींच सकते
सिर्फ़ आचमन कर सकते हैं।

पर्यावरण संकट के दौर में कवि पर्यावरणीय नारेबाजी नहीं करता बल्कि हमारी स्मृतियों में बह रही नदी, नाले, तलाब, पोखरे की छवि को जगा जाता है। लालसा के जंगल में भटके हुए लोगों को कभी बूँद, कभी नदी, कभी चट्टान तो कभी जड़ों के माध्यम से छोटी, सँकड़ी, पगडंडी पर लाकर छोड़ जाता है- जहाँ से कोई सजग व्यक्ति अपनी यात्रा शुरू कर सकता है। जातीय स्मृतियों के आग्रह और नये इतिहास बोध की माँग जगूड़ी के काव्य का हिस्सा है। शायद यही कारण है कि टिहरी के घंगण गाँव में जन्मा यह कवि उस जड़ की खोज करना चाहता है या करता है जो विकास की अबाध गति में मिटाये जा रहे हैं। कहना न होगा कि टिहरी भी एक ऐसी ही परियोजना का शिकार हो गया। प्रकृति के विराट सौन्दर्य के बीच जन्मा कवि आधुनिकीकरण की चालाकियों को समझता है और इसीलिए एक कंकड़ के लुढ़कने की आवाज़ को भी बड़ी आत्मीयता से सुनता है। 'ईश्वर की अध्यक्षता' नामक कविता संग्रह में अपनी बात को वे जिस तरह से प्रकट करते हैं वह किसी कवि की रचना प्रक्रिया को समझने का अच्छा उदाहरण है- 'अचानक जो कोई बात, कोई तथ्य, कोई बिंब, कोई विचार मन में उठता है, जो बिजली की तरह उत्तर से दक्षिण या पूरब से पश्चिम तक कौंध जाता है, जो क्षण विशेष में पूरे दृश्य की तरह रचना के स्वरूप की झलक दिखा देता है, वही क्षण मुझे कविता के जन्म का क्षण लगता है। उसी क्षण विशेष में पाये हुए भाषिक रूपाकार के कारण लगता है कि जो जैसा दिखता था वह वैसा नहीं है और न वह कहीं से वैसा रह गया है जैसा मैं उसे सोचता था। यह कुछ का कुछ होने की और कुछ का कुछ दिखने की सरल, जटिल और घनीभूत स्थिति है जो हर रचना के मूल में बीज की तरह छिपी रहती है।... ''मैंने अपनी आत्मा को दुनिया की आत्मा का हिस्सा बनाने के लिए अपने वास्ते कविता को चुना है। शुरू से ही सोचता रहा हूँ कि हर चीज़ मुझे इस तरह फाँस ले कि मेरी आँखों से देखे और मेरी साँसों में साँस ले। मेरी कविता तदाकार और तादात्म्य की कविता है। शब्दों के शोर में भाषा के उद्दंड खिलवाड़ के बीच भी मैं किसी तल्लीन शब्द की ढूँढ़ में हूँ जो मेरी कविता में खोए हुए बच्चे की तरह अचानक दिख जाये।''

लीलाधर जगूड़ी ऐसे समय के कवि हैं, जिसमें चीजें रूपाकार नहीं होती। साँचे में ढलने से पहले बिखर जाती है। जगूड़ी को उनके आलोचकों ने ठीक से समझा नहीं। उनकी कविताओं में एक-एक शब्द में कई सदियाँ गुजरती है, कई भविष्य साँस लेते हैं, लेकिन समय की रखवाली करता यह रंगरूट किसी की परवाह नहीं करता। ईमानदार सिपाही की तरह यह साहित्य की दुनिया में काम करता जाता है।

'महाकाव्य की घोर असंभावना' के मद्देनज़र जगूड़ी ने अनेक अच्छी लंबी कविताएँ लिखी हैं। 'व्यक्तिगत उड़ान', एक शब्द तिनका', 'हत्या', 'बलदेव खटिक' और 'मंदिर लेन' उनकी प्रसिद्ध-लंबी कविताओं में है लेकिन 'पेड़ की आज़ादी की तासीर गज़ब हैं। 'हत्या' कविता में उन्होंने अपने समकालीनों को याद किया है और धूमिल की कविता के हस्तक्षेप के साथ यह कविता समाप्त होती है। 'मंदिर लेन' कविता में जगूड़ी सफलता

की परिभाषा जब गढ़ रहे होते हैं तब वाकई में वह ऐसे आदमी की बात करते हैं जो ईमानदार होने की कोशिश में थककर अब उस मुकाम पर पहुँच चुका है जो अब अपनी आत्मा यानी सच्चाई, आदर्श, न्याय को मारने से हिचकिचाता नहीं।

मरणोपरांत जीवन में मुझे एक सार्वजनिक औरत मिली
उसने भी बताया कि यह सब वह आत्महत्या के बाद ही कर रही है
वहां मिले मुझे एक से एक से एक धाकड़ अपराधी
जो सब आत्महत्या के बाद ही सफल हुए थे। (मंदिर लेन)

आत्महत्या वर्तमान का यथार्थ हैं लेकिन मुक्ति का आकांक्षी कवि स्वप्न देखना नहीं भूलता।

जब भागना और मौत बराबर हो जाये तो अच्छा है कि -
अपनी मुक्ति के लिए बँधे -बँधे कोई बड़ा स्वप्न देखा जाये। (दूसरे शरीर की खोज)

स्वप्न और यथार्थ के द्वंद्व को लेकर जगूड़ी प्रश्न करते हैं- मनुष्य से। पहाड़ पत्थर, नदियाँ, वृक्ष सभी इस प्रश्न से टकराते हैं। हर प्रश्न के मूल में मनुष्यता की, मानवता की रक्षा करना है। जगूड़ी की कविता में बंदूक की गोली-सी तीव्रता है जो हमारे मन-मस्तिष्क को 'झनझना' जाती है-

पापा, हथकड़ियाँ ढोने वाले हाथों से
वे हमारे हाथ सहला रहे थे/ और गनगनानी तोपों से हमें बहला रहे थे...
जो कभी प्यार नहीं करते
वे अगर कभी सपने में प्यार करते हैं / बच्चे तो बच्चे ऐसे में फ़रिश्ते भी डरते हैं / वे सपने में किसी दूसरे की और से प्यार कर रहे थे वे सपने में बच्चों को प्यार करके बहला नहीं रहे थे दहला रहे थे।

'बच्चा और राजनीति' (घबराये हुए शब्द से)

लीलाधर जगूड़ी की कविताओं का फ़लक इतना विशाल है कि उसे किसी सीमा में नहीं बाँधा जा सकता। जगूड़ी पर अकवितावादी कवि का लेबल आलोचकों ने इस प्रकार लगाया कि उस दौर की व्याख्या में बस नाम आता रहा रचनाकर्म कभी नहीं। पर लगातार वह बिना किसी की परवाह किये अपनी कविता की दुनिया में तल्लीन रहे। न किसी नाम की चाहत, न अकादमिक होने का सपना, पुरस्कार की सोच से दूर एक के बाद एक काव्य को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना असाधारण तो है ही शंखमुखी शिखरों पर (1964), नाटक जारी है (1970), इस यात्रा में (1973), रात अब भी मौजूद है (1976), बची हुयी पृथ्वी (1977), घबराए हुए शब्द (1981), भय भी शक्ति देता है (1991), ईश्वर की अध्यक्षता में (1991), अनुभव के आकाश में चाँद (1994), महाकाव्य के बिना (1995), जितने लोग उतने प्रेम (2013) जैसी रचनाओं से जगूड़ीजी ने साक्षात्कार कर अपने काव्यालोक का साक्षात्कार करवाया। यही वजह थी कि 1997 में अनुभव के आकाश में चाँद को साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। जीवन के प्रत्येक अनुभव को भाषा में ढालना जहाँ शिल्प की विविधता को प्रेषित करता है वहीं प्रयोग का जोखिम उठाते हुए संवेदनशील भाषा का निर्माण करना रचनाकार के पके और तपे होने का बोध कराता है। गढ़वाल रेजीमेंट में 4041100 नंबर के रंगरूट कवि को कवि कर्म के लिए सलाम।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- *कविता का अर्थात् (परमानंद श्रीवास्तव, आधार प्रकाशन)*

- *शंखमुखी शिखरों पर-1964*
- *नाटक जारी है-1970*
- *इस यात्रा में-1973*
- *रात अब भी मौजूद है-1975*
- *बची हुई पृथ्वी-1977*
- *घबराए हुए शब्द-1981*
- *भय भी शक्ति दाता है-1991*
- *अनुभव के आकाश में चाँद-1994*
- *महाकाव्य के बिना-1995*
- *ईश्वर की अध्यक्षता में -1999, राजकमल*
- *खबर का मुँह विज्ञापन से ढ़का है - 2008*